जैन न्यायविद्याका विकास

• डॉ० दरबारीलाल कोठिया, न्यायाचार्य
प्रधान सम्पादक

प्राक्वृत्त

हम यहाँ जैन संस्कृतिके विभिन्न अंगोंमें न्यायशास्त्रके विकास पर विमर्श करेंगे। इस संस्कृतिमें धर्म, दर्शन, न्याय, साहित्य, व्याकरण, आयुर्वेद, ज्यौतिष आदिका समावेश है। और प्रत्येक पर गहराईके साथ विचार किया गया है।

जैनधर्म भारतकी आध्यात्मिक उर्वरा भूमिमें उत्पन्न हुआ, विकसित हुआ और समृद्ध हुआ है। यह भारतीय धर्म होते हुए भी वैदिक और बौद्ध दोनों भारतीय प्रधान धर्मोंसे भिन्न है। इसके प्रवर्त्तक २४ तीर्थंकर हैं; जो वैदिक धर्मके २४ अवतारों तथा बौद्धधर्मके २८ बुद्धोंसे भिन्न हैं। इन सभीका तत्त्व-निरूपण भी भिन्न-भिन्न है। हाँ, कितनी ही बातोंमें उनमें साम्य भी है, जो स्वाभाविक है, क्योंकि सदियोंसे ही नहीं; सहस्राब्दियोंसे एक साथ रहनेवालोंमें एक-दूसरेसे प्रभावित होना और आदान-प्रदान करना बहुत सम्भव है। पुरातत्त्व, इतिहास और साहित्यकी प्रचुर साक्षियोंसे भी सिद्ध है कि जैनधर्म इन दोनों धर्मोंसे पृथक् एवं स्वतन्त्र धर्म है। उसका मूलाधार उसकी विशिष्ट आध्यात्मिकता एवं तत्त्व-निरूपण है।

तीर्थंकर ऋषभदेव

जैनधर्मके आद्यप्रवर्त्तक ऋषभदेव हैं। जैन साहित्यमें इन्हें प्रजापति, आदिब्रह्मा, आदिनाथ, बृहद्देव, पुरुदेव, नाभिसूनु और वृषभ नामोंसे भी समुल्लेखित किया गया है। इनके एक सौ एक (१०१) पुत्र थे। भरत ज्येष्ठ पुत्र थे, जो उनके राज्यके उत्तराधिकारी तो हुए ही, प्रथम सम्राट् भी थे, और जिनके नाम पर हमारे राष्ट्रका नाम "भारत" पड़ा।

वैदिक धर्ममें भी इन्हें अष्टमअवतारके रूपमें माना गया है। "भागवत" में "अर्हन्" राजाके रूपमें इनका विस्तृत वर्णन है। ऋग्वेद आदि प्राचीन वैदिक साहित्यमें भी इनका आदरके साथ संस्तवन किया गया है।

अन्य २० तीर्थंकर

ऋषभदेवके पश्चात् अजितसे लेकर नमि पर्यन्त २० तीर्थंकर ऐसे हुए, जिन्होंने ऋषभदेवकी तरह अपने-अपने समयमें धर्म-तीर्थका प्रवर्त्तन किया। ऋषभदेवके बाद नमिके बीचमें ऐसे समय आए, जब जैन-धर्मका विच्छेद हो गया, जिसका पुनः स्थापन इन्होंने किया। और इससे वे तीर्थंकर कहे गये।

नमिके पश्चात् २२ वें तीर्थंकर अरिष्टनेमि अथवा नेमि हुए। ये श्रीकृष्णके बड़े ताऊ समुद्र विजयके तनय तथा उनके चचेरे भाई थे। ये बचपनसे सात्त्विक, प्रतिभावान् और बलशाली थे। इनके जीवनमें एक घटना ऐसी घटी, जिसने उनके जीवनको मोड़ दिया। जब इनकी बारात जूनागढ़ पहुँची, तो नगरके बाहर एक बाड़ेमें घिरे हुए पशुओंके चीत्कारको इन्होंने सुना। सुनकर रथके सारथीसे इसका कारण पूछा। सारथीने कहा—"महामान्य राजकुमार! बारातमें जो मांसभक्षी राजा आए हैं, उनके मांस-भक्षण हेतु इन्हें मारा जायेगा।" इसे सुनते ही राजकुमार अरिष्टनेमि संसारसे विरक्त हो गये। और पशुओंको घेरेसे मुक्त कराकर विवाह न कराते हुए निकटवर्ती ऊर्जयन्तगिरि पर चले गए। वहाँ पहुँचकर समस्त वस्त्रा-भूषण त्याग दिए और दिगम्बर साधु हो गए। घोर तपस्या और ध्यान करके वीतराग-सर्वज्ञ बन गए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्षों तक जनसामान्यको अहिंसा तथा मोक्षमार्गका उन्होंने उपदेश दिया । अंतमें उसी ऊर्जयन्तगिरिसे निर्वाण प्राप्त किया । वैदिक साहित्यमें अनेक स्थलों पर विघ्न विनाशके लिए इनका स्मरण किया गया है ।

अरिष्टनेमिके एक हजार वर्ष पश्चात् २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ हुए, जिनका जन्म वाराणसीमें हुआ । राजा अश्वसेन और माता वामादेवीकी कूँखसे जन्म लिया । एक दिन कुमार पार्श्व वन-क्रीड़ाके लिए गंगाके किनारे गए । वहाँ उन्होंने देखा कि एक तापसी पंचाग्नि तप रहा है । वह अग्निमें गीले और पोले लक्कड़ जला रहा था । पार्श्वकी पैनी दृष्टिने देखा कि उस लक्कड़में एक नाग-नागनीका युगल है । और जो अर्धमृतक अवस्थामें है । कुमार पार्श्वने यह तापसीसे कहा । तापसी झुंझला कर बोला—"इसमें कहाँ नाग-नागनी हैं" और जब उस लक्कड़को फाड़ा गया तो उसमें मरणासन्न नाग-नागनीको देखा । पार्श्वने "णमोकारमंत्र" पढ़कर दोनोंको सम्बोधा, जिसके प्रभावसे वह युगल मरकर देव-जातिमें धरणेन्द्र-पद्मावती हुआ । जैन मंदिरोंमें पार्श्वनाथकी अधिकांश मूर्तियोंके मस्तक पर जो फणामण्डप देखा जाता है । वह धरणेन्द्र के फणामण्डपका अंकन है, जिसे उसने अपने उपकारीके प्रति कृतज्ञतावश कमठ द्वारा योगमग्न पार्श्वनाथ पर किए गये उपसर्गोंके निवारणार्थ अपनी विक्रियासे बनाया था । पार्श्वकुमार लोकमें फैली हुई इन मूढ़ताओंको देखकर कुमार अवस्थामें ही प्रव्रजित हो गये, न विवाह किया और न राज्य किया । कठोर तपस्या कर 'अर्हन्तकेवली' हो गये और जगह-जगह पदयात्राएँ करके लोकमें फैली मूढ़ताओंको दूर किया तथा ज्ञानका प्रचार किया । अंतमें उन्होंने विहार प्रदेशमें स्थित सम्मेदशिखर पर्वतसे, जिसे आज "पार्श्वनाथ हिल" कहा जाता है, मुक्तिलाभ किया ।

पार्श्वनाथसे अढ़ाई सौ वर्ष पश्चात् ईसापूर्व ५२६में अन्तिम एवं २४वें तीर्थंकर महावीर हुए, जिन्हें वर्धमान, वीर, अतिवीर और सन्मति इन चार नामोंसे भी उल्लिखित किया जाता है । ये वैशाली गणतंत्रके नायक चेटकके धेवता तथा सिद्धार्थ एवं त्रिशलाके पुत्र थे । कुण्डलपुर (कुण्डपुर) इनकी जन्मभूमि थी । त्रिशलाका दूसरा नाम प्रियकारिणी था । प्रियकारिणी बिम्बसार अपरनाम राजा श्रेणिककी रानी चेलनाकी सगी बड़ी बहिन थीं । महावीरके समयमें भी अनेक मूढ़ताएँ व्याप्त थीं । धर्मके नामपर नरमेध, गोमेध, अश्वमेध, अजमेध आदि हिंसा पूर्ण यज्ञ किए जाते थे । तथा "याज्ञिकी हिंसा हिंसा न भवति" जैसे श्रुति वाक्योंसे उनका समर्थन किया जाता था । महावीरने देशकी यह स्थिति देखकर उसे बदलनेका निर्णय किया । और भरी जवानीमें तीस वर्षकी वयमें ही राजमहलके सुखोंका त्यागकर दिगम्बर साधु हो गये । और मौन-पूर्वक बारह वर्ष घोर तपस्या की । फलतः ४२ वर्षकी अवस्थामें उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया और पूर्ण वीतराग-सर्वज्ञ हो गए । उन्होंने तीस वर्ष तक विहार करके उक्त हिंसापूर्ण यज्ञोंका निषेध किया । तथा अहिंसापूर्ण आत्मयज्ञ करनेका उपदेश दिया । इसका परिणाम यह हुआ कि नरमेध, गोमेध आदि यज्ञ बंद हो गये । और लोगोंके हृदयमें अहिंसाको ही धर्म माननेकी आस्था दृढ़ हो गई । वैदिक धर्मके महान् विद्वान् एवं वैदिक कर्मकाण्डके प्रसिद्धकर्त्ता गौतम इन्द्रभूति और उनके वैदिक विद्वान् दश भाई भी अहिंसाके प्रति आस्थावान् बन गए । इतना ही नहीं, महावीरके पादमूलमें पहुँचकर उनके शिष्य भी हो गये । इन्द्रभूति तो उनका प्रधान गणधर (आद्यशिष्य) बन गया ? और महावीरके उपदेशोंको उसने चहुँओर फैलाया ।

ध्यातव्य है कि पार्श्वनाथकी परम्पराके एक दिगम्बर साधुसे दीक्षित एवं नग्न रहना, खड़े-खड़े आहार लेना, केशलुञ्चन करना आदि दिगम्बर चर्याको पालनेवाले, किन्तु उसे बादमें कष्टदायी ज्ञातकर त्याग देनेवाले तथा मध्यम मार्गके प्रवर्त्तक गौतम बुद्धने भी महावीरके अहिंसा-प्रचारमें प्रबल सहयोग किया । दीघनिकाय आदि बौद्ध साहित्यमें अनेक स्थलोंपर "निग्गंथनाथपुत्त"के नामसे महावीरके सिद्धान्तोंकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चर्चा की गई है। आज वे ऐतिहासिक महापुरुषके रूपमें विश्रुत एवं सर्वमान्य हैं। सन् १९७४-७५में समग्र भारत और विश्वके अनेक देशोंमें उनकी पावन २५००वीं निर्वाण जयन्ती पूरे एक वर्ष तक मनाई गयी थी, जिसके समारोह भारतके सभी राज्योंमें आयोजित हुए थे। जिनमें पूरे राष्ट्रने उन्हें श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित की थीं।

अंतमें तीर्थंकर महावीरने बुद्धकी निर्वाणभूमि कुशीनगरके पास स्थित पावासे मोक्ष प्राप्त किया।

तीर्थंकर-देशना

इन चौबीस तीर्थंकरोंने अपने-अपने समयमें धर्ममार्गसे च्युत जनसमुदायको सम्बोधित किया, और उसे धर्ममार्गमें लगाया। इसीसे इन्हें धर्ममार्ग-मोक्षमार्गका नेता तीर्थ प्रवर्त्तक, तीर्थंकर कहा गया है। जैन सिद्धान्तके अनुसार जनकल्याणकी भावना भानेसे बद्ध "तीर्थंकर" नामकी एक पुण्य (प्रशस्त) प्रकृति—कर्म है, उसके उदयसे तीर्थंकर होते हैं और वे तत्त्वोपदेश करते हैं। नौवीं शताब्दीके आचार्य विद्यानंदने 'आप्तपरीक्षा' कारिका सोलहमें स्पष्ट कहा है कि "विना तीर्थकरत्वेन नाम्ना नार्थोपदेशना" अर्थात् बिना तीर्थंकर पुण्यनामकर्मके तत्त्वोपदेश सम्भव नहीं है।

इन तीर्थंकरोंका वह उपदेश जिनशासन, जिनागम, जिनश्रुत, द्वादशांग, जिनप्रवचन आदि नामोंसे व्यवहृत किया गया है। उनके इस उपदेशको उनके प्रमुख एवं प्रतिभाशाली शिष्य विषयवार भिन्न-भिन्न प्रकरणोंमें निबद्ध करते हैं। अतएव उसे प्रबन्ध एवं ग्रन्थ भी कहते हैं। उनके उपदेशको निबद्ध करने वाले इन प्रमुख शिष्योंको जैनवाङ्मयमें "गणधर" कहा गया है। ये गणधर अत्यन्त सूक्ष्मबुद्धिवाले एवं विशिष्ट क्षयोपशमके धारक होते हैं। उनकी धारणाशक्ति और स्मरणशक्ति असाधारण होती है।

उत्तरकालमें अल्पमेधाके धारक आचार्य उनके इस श्रुतका आश्रय लेकर अपने विभिन्न-विषयक ग्रन्थोंकी रचना करते हैं। और उनके इसी जिनोपदेशको जन-जन तक पहुँचानेका प्रशस्त प्रयास करते हैं। तथा क्षेत्रीय भाषाओंमें भी उसे ग्रथित करते हैं।

उपलब्ध-श्रुत

ऋषभदेवका श्रुत अजित तक, अजितका श्रुत शम्भव तक और शम्भवका अभिनन्दन तक, इस तरह पूर्व तीर्थंकरका श्रुत उत्तरवर्ती अगले तीर्थंकर तक रहा। तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वका द्वादशाङ्ग श्रुत तब तक रहा, जब तक महावीर तीर्थंकर (धर्मोपदेष्टा) नहीं हुए। आज जो आंशिक द्वादशाङ्गश्रुत उपलब्ध है वह अंतिम तीर्थंकर महावीरसे सम्बद्ध है। अन्य सभी तीर्थंकरोंका श्रुत लेखबद्ध न होने तथा स्मृतिधारकोंके न रहनेसे नष्ट हो चुका है। वर्धमान महावीरका द्वादशाङ्गश्रुत भी पूरा उपलब्ध नहीं है। आरम्भमें वह आचार्य-शिष्य-परम्परामें स्मृतिके आधारपर विद्यमान रहा। उत्तरकालमें स्मृतिधारकोंकी स्मृति मंद पड़ जानेपर उसे निबद्ध किया गया। दिगम्बर परम्पराके अनुसार वर्तमानमें जो श्रुत उपलब्ध है वह बारहवें अंग दृष्टिवादका कुछ अंश है, जो धरसेनाचार्यको आचार्य परम्परासे प्राप्त था और जिसे उनके शिष्य भूतबलि और पुष्पदंतने उनसे प्राप्तकर लेखबद्ध किया। शेष ग्यारह अंग और बारहवें अंगका बहुभाग नष्ट हो चुका है। श्वेताम्बर परम्पराके अनुसार देवर्धि गणीके नायकत्वमें हुई तीसरी बलभी वाचनामें सङ्कलित ग्यारह अंग मौजूद हैं, जिन्हें दिगम्बर परम्परामें मान्य नहीं किया गया। श्वेताम्बर परम्परा दृष्टिवादका विच्छेद स्वीकार करती है। आज आवश्यक है कि दोनों परम्पराओंके अवशेष श्रुतका अध्ययन किया जाये और महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जाँए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म, दर्शन और न्याय

उक्त श्रुतमें तीर्थंकर महावीरने धर्म, दर्शन और न्याय इन तीनोंमें भेद करते हुए बताया कि मुख्यतया आचारका नाम धर्म है। धर्मका जिनविचारों द्वारा समर्थन किया जाए वे विचार दर्शन हैं। और धर्मके सम्पोषणके लिए प्रस्तुत विचारोंको युक्ति-प्रत्युक्ति, खण्डन-मण्डन, प्रश्न-उत्तर एवं शंका-समाधान पूर्वक दृढ़ करना न्याय है। उसी को प्रमाणशास्त्र भी कहते हैं। इन्हें एक उदाहरण द्वारा यों समझें। अहिंसाका पालन करो, किसी जीवकी हिंसा न करो, सत्य बोलो, असत्य मत बोलो आदि विधि और प्रतिषेध रूप आचारका नाम धर्म है। जब इसमें "क्यों"का सवाल उठता है तो उसके उत्तरमें कहा जाता है कि अहिंसाका पालन करना जीवोंका कर्त्तव्य है और इससे सुख मिलता है। किन्तु जीवोंकी हिंसा करना अकर्त्तव्य है और उससे दुःख मिलता है। इसी तरह सत्य बोलना कर्त्तव्य है, और उससे न्यायकी प्रतिष्ठा होती है। किन्तु असत्य बोलना अकर्त्तव्य है और उससे अन्यायको बल मिलता है। इस प्रकारके विचार दर्शन कहे जाते हैं। और जब इन विचारोंको दृढ़ करनेके लिए यों कहा जाता है कि दया करना जीवका स्वभाव है, यदि उसे स्वभाव न माना जाए तो कोई भी जीव जीवित नहीं रह सकता। सब सबके भक्षक या घातक हो जायेंगे। परिवारमें, देशमें और विश्वके राष्ट्रोंमें अनवरत हिंसा रहनेपर शान्ति और सुख कभी उपलब्ध नहीं हो सकेंगे। इसी तरह सत्य बोलना मनुष्यका स्वभाव न हो तो परस्परमें अविश्वास छा जायेगा और लेन-देन आदिके सारे लोकव्यवहार लुप्त हो जायेंगे। इस तरह धर्मके समर्थनमें प्रस्तुत विचाररूप दर्शनको दृढ़ करना न्याय है। तात्पर्य यह कि धर्म जहाँ सदाचारके विधान और असदाचारके निषेधरूप है वहाँ दर्शन उनमें कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य और सुखदुःखका विवेक जागृत करता है। तथा न्याय दर्शनके रूपमें प्रस्तुत विचारोंको हेतुपूर्वक मस्तिष्कमें बिठा देता है। यही कारण है कि विश्वमें इन तीनोंपर पृथक्-पृथक् शास्त्रोंकी रचना हुई है। भारतमें भी जैन, बौद्ध और वैदिक सभीने धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र और न्यायशास्त्रका प्रतिपादन किया है। तथा उन्हें महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

जैनन्यायका उदय और विकास

जैनश्रुतके बारहवें अंग दृष्टिवादमें तीन सौ तिरेसठ मतोंकी विवेचना की गई है। जैनदर्शन और जैनन्यायके बीज भी इसमें प्रचुर मात्रामें मिलते हैं। आचार्य भूतबलि और पुष्पदंत द्वारा निबद्ध षट्खण्डागममें "सियापज्जत्ता", "सिया अपज्जत्ता", "मणुस अपज्जता दव्वपमाणेण केवडिया", "असंखेज्जा" जैसे "सिया" (स्यात्) शब्द और प्रश्नोत्तर शैलीको लिए हुए वाक्य उपलब्ध हैं। कुन्दकुन्दने पंचास्तिकाय, प्रवचनसार आदि आर्षग्रन्थोंमें उनके कुछ और अधिक बीज दिये हैं। "सिय अत्थि णत्थि उहयं" आदि उनके वाक्य उदाहृत किये जा सकते हैं। श्वेताम्बर आगमोंमें भी जैनदर्शन और जैन न्यायके बीज बहुलतया पाये जाते हैं। उनमें अनेक जगह 'से केणट्ठेणं भंते एवमुच्चई जीवाणं, भंते, किं सासया असासया ? गोयमा! जोवा सिय सासया सिय असासया ? गोयमा दव्वट्ठयाए सासया भावट्ठयाए असासया।' जैसे तर्क गर्भित प्रश्नोत्तर प्राप्त होते हैं। ध्यातव्य है कि 'सिया' या 'सिय' प्राकृत शब्द हैं, जो संस्कृतके 'स्यात्' शब्दके पर्यायवाची हैं। और 'कथंचित्' अर्थके बोधक हैं। इससे प्रकट है कि स्याद्वाददर्शन और स्याद्वादन्याय आर्षग्रन्थोंमें भी प्राप्त हैं। जैन मनीषी यशोविजयने लिखा है कि 'स्याद्वादार्थो दृष्टिवादार्णवोत्थः' अर्थात् स्याद्वाद (जैनदर्शन और न्याय) दृष्टिवाद रूप अर्णवसे उत्पन्न हुए हैं। यथार्थतः स्याद्वाद दर्शन और स्याद्वाद न्याय ही जैनदर्शन और जैन न्याय हैं। आचार्य समन्तभद्रने सभी तीर्थंकरोंको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'स्याद्वादी' कहकर उनके उपदेशको स्याद्वाद रूप कहा है। अकलंकदेव तो यों कहते हैं कि ऋषभसे लेकर महावीर पर्यन्त सभी तीर्थंकर स्याद्वादी—स्याद्वादके उपदेशक हैं।

यथा—

ऋषभादिमहावीरान्तेभ्यः स्वात्मोपलब्धये।
धर्मतीर्थंकरेभ्योऽस्तु, स्याद्वादिभ्यो नमो नमः ॥—लघीय० १

समन्तभद्र, अकलंक, यशोविजय आदि मनीषियोंके सिवाय सिद्धसेन, विद्यानंद जैसे विश्रुत दार्शनिकों एवं तार्किकोंने भी स्याद्वाददर्शन और स्याद्वादन्यायको जैनदर्शन और जैनन्याय प्रतिपादित किया है। तथा उनकी उत्पत्ति दृष्टिवाद नामक बारहवें अंगसे बतलाई है।

अब हम इनके विकासपर विचार करेंगे। कालकी दृष्टिसे उनके विकासको तीन कालखण्डोंमें विभक्त किया जा सकता है। और उन कालखण्डोंके नाम निम्न प्रकार रखे जा सकते हैं—

१—आदिकाल अथवा समन्तभद्रकाल (ई० २०० से ई० ६५०)।

२—मध्यकाल अथवा अकलंककाल (ई० ६५० से ई० १०५०)।

३—अंतकाल अथवा प्रभाचन्द्रकाल (ई० १०५० से १७००)।

१. आदिकाल अथवा समन्तभद्रकाल

जैनदर्शन एवं जैनन्यायके विकास का आरम्भ यों तो आचार्य कुन्दकुन्दसे उपलब्ध होने लगता है। उनके पंचास्तिकाय, प्रवचनसार आदि प्राकृत ग्रन्थोंमें दर्शन एवं न्यायकी चर्चा प्राप्त है। श्वेताम्बर परम्परामें प्रसिद्ध "भगवतीसूत्र" (५।३।१९१-१९२) स्थानांगसूत्र (२९८) आदिमेंभी दर्शनकी सामान्य चर्चा उपलब्ध है। आ० गृद्धपिच्छके तत्त्वार्थसूत्रमें, जो जैन संस्कृत-वाङ्मयका आद्य सूत्र ग्रन्थ है, सिद्धान्तके साथ दर्शन और न्यायकी भी प्ररूपणा मिलती है। किन्तु आ० समन्तभद्रस्वामीने उस आरम्भको आगे बढ़ाया और बहुत स्पष्ट किया है। उनकी उपलब्ध ५ कृतियोंमें चार (४) कृतियाँ हैं तो तीर्थंकरोंके स्तवनरूपमें, पर उनमें दर्शन और न्यायके प्रचुर उपादान मिलते हैं, जो प्रायः उनसे पूर्व अप्राप्य हैं। उन्होंने इनमें एकान्तवादों की दृढ़तासे समीक्षा करके अनेकांत और स्याद्वादकी प्रस्थापना की है। उनकी वे चार कृतियाँ ये हैं—(१) 'आप्तमीमांसा' अपर नाम 'देवागम', (२) 'युक्त्यनुशासन', (३) 'स्वयम्भू' और (४) 'जिनशतक'। इनमें उन्होंने स्याद्वाद, सप्तभंगनय और अनेकान्तका सुन्दर एवं प्रौढ़ संस्कृतमें प्रतिपादन किया है, जो उस प्राचीन जैन संस्कृतवाङ्मयमें पहली बार मिलता है। प्रतीत होता है कि समन्तभद्रने भारतीय दार्शनिक एवं तार्किक क्षेत्रमें जैनदर्शन और जैन न्यायके युग प्रवर्त्तकका कार्य किया है। उनसे पूर्व जैन संस्कृतिके प्राणभूत स्याद्वादको प्रायः आगमरूप ही प्राप्त था। और उसका आगमिक विषयोंके निरूपणमें ही उपयोग किया जाता था। जैसा कि हम पहले 'सिया', 'सिय' के सन्दर्भमें देख आए हैं। उसके समर्थनमें युक्तिवादकी आवश्यकता बहुत कम समझी जाती थी। परन्तु समन्तभद्रके कालमें उसकी विशेष आवश्यकता बढ़ गई, क्योंकि ई० २री-३री शताब्दीका समय भारत वर्षके दार्शनिक इतिहासमें अपूर्व क्रांतिका माना जाता है। इस समय विभिन्न दर्शनोंमें अनेक प्रभावशाली दार्शनिक हुए हैं। यद्यपि वैदिक परम्परा वैशेषिक, मीमांसा, न्याय, वेदान्त, सांख्य आदि अनेक शाखाओंमें विभक्त थी और उनमें भी परस्पर खण्डन-मण्डन, आलोचन-प्रत्यालोचन चलता था। किन्तु श्रमणों और श्रमण सिद्धान्तों के विरुद्ध सब एक थे। और सभी अपने सिद्धान्तोंका आधार प्रायः वेदको मानते थे। ऐसे समयमें ईश्वरकृष्ण, विन्ध्यवासी, वात्स्यायन, असंग, वसुबन्धु आदि विद्वान् दोनों परम्पराओंमें आविर्भूत हुए। और उन्होंने स्वपक्षके समर्थन एवं परपक्षके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खण्डनके लिए अनेक शास्त्रोंकी रचना की। इस तरह वह समय सभी दर्शनोंका अखाड़ा बन गया था। सभी दार्शनिक एक दूसरेको परास्त करनेमें लगे थे। इस सबका आभास उस कालमें रचे एवं उपलब्ध दार्शनिक साहित्य से होता है।

इसी समय जैन परम्परामें दक्षिण भारतमें महामनीषी समन्तभद्रका उदय हुआ, जो उनकी उपलब्ध कृतिओंसे प्रतिभाशाली और तेजस्वी पाण्डित्यसे युक्त प्रतीत होते हैं। उन्होंने उक्त दार्शनिकोंके संघर्षको देखा और अनुभव किया कि परस्परमें एकान्तोंके आग्रहसे वास्तविक तत्त्व लुप्त हो रहा है। सभी दार्शनिक अपने-अपने पक्षाग्रहके अनुसार तत्त्वका प्रतिपादन करते हैं। कोई तत्त्वको मात्र भाव (अस्तित्व) रूप, कोई अभाव (नास्तित्व) रूप, कोई अद्वैत (एक) रूप, कोई द्वैत (अनेक) रूप, कोई शाश्वतरूप कोई अशाश्वत-रूप, कोई पृथक् (भेद) रूप, कोई अपृथक् (अभेद) रूप मान रहा है, जो तत्त्व (वस्तु) का एक-एक अंश है, समग्र रूप नहीं। इस सबकी झलक उनकी 'आप्तमीमांसा' में मिलती है। उसमें उन्होंने इन सभी एकान्त मान्यताओंको प्रस्तुत कर उनका समन्वय किया है इसका विस्तृत विवेचन उनके ग्रन्थोंसे किया जा सकता है।

यद्यपि श्रमण और श्रमणेतरोंके वादोंकी चर्चा दृष्टिवादमें उपलब्ध है। किन्तु समन्तभद्रके कालमें वह उभरकर अधिक आई। समन्तभद्रने किसीके पक्षको मिथ्या बतलाकर तिरस्कृत नहीं किया, अपितु उन्हें वस्तुका अपना एक-एक अंश (धर्म) बतलाया। वक्ता जिस धर्मकी विवक्षा करेगा वह मुख्य हो जायेगा और शेष धर्म गौण। इस तरह समन्तभद्रने वस्तुको अनंतधर्मा सिद्ध करके स्याद्वादके द्वारा समस्त विवादोंको शमित किया। इसके सिवाय प्रचलित एकान्तवादोंका स्याद्वादन्याय द्वारा अपनी कृतियोंमें ही समन्वय नहीं किया, अपितु भारतके पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तरके सभी देशों व नगरोंमें पदयात्रा करके वादियोंसे शास्त्रार्थ भी किए। और उनके एकान्तोंको स्याद्वादन्यायसे समाहित किया। उदाहरणके लिए श्रवणबेल-गोला (कर्नाटक) का एक शिलालेख न० ५४ यहाँ दे रहे हैं :—

पूर्वं पाटलिपुत्रमध्यनगरे भेरी मया ताडिता,
पश्चान्मालव-सिन्धु-ठक्क विषये काँचीपुरे वैदिशे।
प्राप्तोऽहं करहाटकं बहुभटं विद्योत्कटं संकटं,
वादार्थी विचराम्यहं नरपते शार्दूलविक्रीडितम्॥

इस पद्यमें समन्तभद्रने स्पष्ट कहा है कि "हे राजन्! मैंने पहले पाटलिपुत्र (पटना) नगरमें वादके लिए भेरी बजाई और वहाँके वादिओंके साथ वाद किया। उसके पश्चात् मालव, सिन्धु, ठक्क (पंजाब), कांचीपुर और वैदिश (विदिशा) में वादिओंको वादके लिए आहूत किया और अब करहाटक (कोल्हापुर) में विद्याभिमानी वादिओंको सिंहकी तरह ललकारा है।"

समन्तभद्र वादार्थीके अतिरिक्त एक अन्य प्रसंगमें किसी राज सभामें अपना परिचय भी देते हैं :—

आचार्योऽहं कविरहमहं वादिराट् पंडितोऽहं,
दैवज्ञोऽहं भिषगहमहं मान्त्रिकस्तांत्रिकोऽहं।
राजन्नस्यां जलधिवलयामेखलायाभिलाया-
माज्ञासिद्धः किमिति बहुना सिद्धसारस्वतोऽहं॥

इसमें कहा है कि "हे राजन्! मैं आचार्य हूँ, मैं कवि हूँ, मैं वादिराट् हूँ, मैं पंडित हूँ, मैं दैवज्ञ हूँ, मैं भिषग् हूँ, मैं मान्त्रिक हूँ, मैं तान्त्रिक हूँ और तो क्या मैं इस समुद्रवलया पृथ्वी पर आज्ञासिद्ध हूँ, जो आदेश दूँ वही होता है। तथा सिद्धसारस्वत हूँ—सरस्वती मुझे सिद्ध है।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समन्तभद्र ने एकान्तवादोंको तोड़ा नहीं, जोड़ा है। और वस्तुको अनेकांत स्वरूप सिद्ध किया है।

साथ ही स्याद्वादन्यायके अनेक अंगोंका प्रणयन किया। जैसे प्रमाणका लक्षण, प्रमाणके भेद, प्रमाणका विषय, प्रमाणके फलकी व्यवस्था, नय लक्षण, हेतुलक्षण, सप्तभंगीका समस्त वस्तुओंमें संयोजन, अनेकांतमें भी अनेकान्त, वस्तुका स्वरूप, स्याद्वाद न्यायकी सम्यक्सिद्धि, सर्वज्ञकी सिद्धि आदि। इसीसे यह काल जैनदर्शन और जैनन्यायके विकासका आदिकाल है। और इस कालको समन्तभद्रकाल कहा जा सकता है। निस्सन्देह जैनदर्शन और जैनन्यायके लिए किया गया उनका यह महाप्रयास है।

समन्तभद्रके इस कार्यको उनके उत्तरवर्ती श्रीदत्त, पूज्यपाद-देवनंदि, सिद्धसेन, मल्लवादी, सुमति, पात्रस्वामी आदि जैन दार्शनिकों एवं तार्किकोंने अपनी महत्त्वपूर्ण रचनाओं द्वारा अग्रसारित किया। श्रीदत्तने, जो तिरेसठ वादियोंके विजेता थे, जल्पनिर्णय, पूज्यपाद-देवनंदिने सारसंग्रह एवं सर्वार्थसिद्धि, सिद्धसेनने सन्मतिसूत्र, मल्लवादीने द्वादशारनयचक्र, सुमतिदेवने सन्मतिटीका और पात्रस्वामीने त्रिलक्षणकदर्शन जैसी तार्किक कृतियोंको रचा है। दुर्भाग्यसे जल्पनिर्णय, सारसंग्रह, सन्मतिटीका और त्रिलक्षणकदर्शन आज उपलब्ध नहीं हैं, केवल उनके तर्कग्रन्थों तथा शिलालेखोंमें उल्लेख पाये जाते हैं। सिद्धसेनका सन्मतिसूत्र, पूज्यपादकी सर्वार्थसिद्धि और मल्लवादीका द्वादशारनयचक्र उपलब्ध हैं; जो समन्तभद्रकी कृतियोंके आभारी हैं।

इस कालमें और भी दर्शन एवं न्यायके ग्रन्थ रचे गए होंगे, जो आज हमें उपलब्ध नहीं हैं। बौद्ध, वैदिक और जैन शास्त्रभण्डारोंका अभी पूरी तरह अन्वेषण नहीं हुआ, अन्वेषण होनेपर सम्भव है कि उनमें कोई ग्रन्थ उपलब्ध हो जाए। पहले अकलंकका 'सिद्धि-विनिश्चय' और 'प्रमाणसंग्रह' अश्रुत थे। अब वे एक श्वेताम्बर शास्त्र भण्डारमें प्राप्त हो गये और उनका भारतीय ज्ञानपीठसे प्रकाशन भी हो चुका है। बौद्ध दार्शनिक शान्तरक्षित (ई० ७वीं-८वीं शती) और उनके साक्षात् शिष्य कमलशीलने तत्त्वसंग्रह एवं उसकी टीकामें जैन तार्किकोंके नामोल्लेख अथवा बिना नामोल्लेखके कई जैन तर्कग्रन्थोंके उद्धरण प्रस्तुत किये हैं और उनकी आलोचना की है। परन्तु वे ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि इस आदिकाल अथवा समन्तभद्रकालमें जैनदर्शन और जैनन्यायकी एक योग्य और उत्तम भूमिका बन चुकी थी।

२. मध्यकाल अथवा अकलंककाल

यह काल ईसवी सन् ६५० से ईसवी सन् १०५० तक माना जाना चाहिए। समन्तभद्र द्वारा निर्मित जैनन्यायकी उक्त भूमिकापर इस (जैनदर्शन और जैनन्याय) का उत्तुङ्ग एवं सर्वाङ्गपूर्ण महान् प्रासाद जिस कुशल एवं तीक्ष्णबुद्धि तार्किक–शिल्पीने खड़ा किया वह है सूक्ष्मप्रज्ञ 'अकलंकदेव'। अकलंकदेवके कालमें भी बलिष्ठ दार्शनिक मुठभेड़ थी। एक ओर शब्दाद्वैतवादी भर्तृहरि, प्रसिद्ध मीमांसक कुमारिल, न्याय-निष्णात नैयायिक उद्योतकर आदि वैदिक विद्वान् जहाँ अपने-अपने पक्षोंपर आरूढ़ थे, वहीं दूसरी ओर धर्मकीर्ति, उनके तर्कपटु शिष्य एवं समर्थक व्याख्याकार प्रज्ञाकर, धर्मोत्तर, कर्णकगोमि जैसे बौद्ध मनीषी भी अपनी मान्यताओंपर आग्रहबद्ध थे। शास्त्रार्थों और शास्त्रोंके निर्माणकी पराकाष्ठा थी। प्रत्येक दार्शनिकका प्रयत्न था कि जिस किसी तरह वह अपने पक्षको सिद्ध करे और परपक्षका निराकरण कर अपनी विजय प्राप्त करे। इसके अतिरिक्त परपक्ष असद् प्रकारोंसे तिरस्कृत एवं पराजित किया जाता था। विरोधीको 'पशु', 'अह्लीक', 'जड़मति' जैसे अभद्र शब्दोंका प्रयोग तो सामान्य था। यह काल जहाँ तर्कके विकासका मध्याह्न माना जाता है वहाँ इस कालमें दर्शन और न्यायका बड़ा उपहास भी हुआ है। तत्त्वके संरक्षणके लिए छल, जाति, निग्रहस्थान जैसे असत् साधनोंका खुलकर प्रयोग करना और उन्हें स्वपक्ष सिद्धिका साधन एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शास्त्रार्थका अंग मानना इस कालकी देन बन गई थी। क्षणिकवाद, नैरात्म्यवाद, शून्यवाद, शब्दाद्वैत, ब्रह्माद्वैत, विज्ञानाद्वैत आदि वादोंका पुरजोर समर्थन इस कालमें धड़ल्लेसे किया गया और कट्टरतासे विपक्षका निरास किया गया।

इस दार्शनिक एवं तार्किक संघर्षके कालमें सूक्ष्मदृष्टि अकलंकका प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने इस समग्र स्थितिका अध्ययन किया तथा सभी दर्शनोंका गहरा एवं सूक्ष्म चिन्तन किया, उन्हें प्रच्छन्नवेशमें तत्कालीन शिक्षाकेन्द्रों, यथा काञ्ची, नालन्दा आदि विश्वविद्यालयोंमें अध्ययन करना पड़ा।

समन्तभद्रने जो स्याद्वाद, अनेकांतवाद और सप्तभंगीका प्रतिपादन किया था, उसे ठीक तरह से न समझनेके कारण दिग्नाग, धर्मकीर्ति आदि बौद्ध विद्वानों तथा उद्योतकर, कुमारिल आदि वैदिक मनीषियोंने खण्डन करनेका प्रयत्न किया। अकलंकने उसका उत्तर देनेके लिए दो अपूर्व कार्य किए। एक तो स्याद्वाद और अनेकांतपर किये गये आक्षेपोंका सबल जवाब दिया। दूसरा कार्य जैनदर्शन और जैनन्यायके चार महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंका प्रणयन किया, जिनमें उन्होंने न केवल अनेकांत, स्याद्वाद और सप्तभंगीपर किये गये आक्षेपोंका उत्तर दिया, अपितु उन सभी एकान्तपक्षोंमें दूषण भी प्रदर्शित किये। उनके वे दोनों कार्य हम यहाँ संक्षेपमें देनेका प्रयत्न करेंगे।

दूषणोद्धार

आप्तमीमांसामें समन्तभद्रने अर्हन्तकी सर्वज्ञता और उनके उपदेश (स्याद्वाद) की सहेतुक सिद्धि की है। दोनोंमें साक्षात् (प्रत्यक्ष) और असाक्षात् (परोक्ष) का भेद बतलाते हुए दोनोंको सर्वतत्त्वप्रकाशक कहा है। उनमें इतना ही अंतर है कि अर्हन्त वक्ता हैं और स्याद्वाद उनका वचन है। यदि वक्ता प्रमाण है तो उसका वचन भी प्रमाण माना जाता है। आप्तमीमांसामें अर्हन्तको युक्तिपुरस्सर आप्त सिद्ध किया गया है और उनका उपदेश स्याद्वाद भी प्रमाण माना गया है।

मीमांसक कुमारिलको यह सह्य नहीं हुआ, क्योंकि वे किसी पुरुषको सर्वज्ञ स्वीकार नहीं करते, तथा वेदको अपौरुषेय मानते हैं। अतएव कुमारिल 'अर्हत्'की सर्वज्ञतापर आपत्ति करते हुए कहते हैं—

एवं यैः केवलज्ञानमिन्द्रियाद्यनपेक्षिणः।
सूक्ष्मातीतादिविषयं जीवस्य परिकल्पितम् ॥
नर्ते तदागमात्सिद्धयेन्न च तेनागमो विना।

यहाँ कहा गया है कि जो सूक्ष्म, अतीत आदि विषयोंका अतीन्द्रिय केवलज्ञान पुरुषके माना जाता है वह आगमके बिना सिद्ध नहीं होता और आगम उसके बिना सम्भव नहीं। इस प्रकार दोनोंमें अन्योन्याश्रय दोष होनेसे न अर्हत् सर्वज्ञ हो सकता है और न उनका उपदेश (स्याद्वाद) ही सिद्ध हो सकता है।

यह अर्हत्की सर्वज्ञता और उनके स्याद्वाद रूप उपदेशपर कुमारिलका एक साथ आक्षेप है। अकलंकने इस आक्षेपका उत्तर सबलताके साथ इस प्रकार दिया है—

एवं यत्केवलज्ञानमनुमानविजृम्भितम्।
नर्ते तदागमात् सिद्धयेन्न च तेन विनाऽऽगमः॥
सत्यमर्थबलादेव पुरुषातिशयो मतः।
प्रभवः पौरुषेयोऽस्य प्रबन्धोऽनादिरिष्यते॥

"यह सच है कि अनुमान द्वारा सिद्ध केवलज्ञान (सर्वज्ञता) आगमके बिना और आगम केवलज्ञान-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के बिना सिद्ध नहीं होता तथापि उनमें अन्योन्याश्रय दोष नहीं है क्योंकि पुरुषातिशय (केवलज्ञान) को अर्थवश (प्रतीतिवश) माना जाता है। दोनोंमें बीजांकुरके प्रवाहकी तरह अनादि प्रवाह माना गया है। अतएव अर्हत्की सर्वज्ञता और उनका उपदेश (स्याद्वाद) दोनों ही युक्तिसिद्ध हैं।''

पाठक, यहाँ देखें कि समन्तभद्रने जो अनुमानसे आप्तमीमांसा कारिका ५, ६, ७ में सर्वज्ञताकी सिद्धि की है और जिसका समालोचन कुमारिलने उक्त प्रकारसे किया है, अकलंकदेवने उसीका यहाँ विशदताके साथ सहेतुक उत्तर दिया है। तथा सर्वज्ञता (केवलज्ञान) और आगम (स्याद्वाद) दोनोंमें बीजांकुर-संततिकी तरह अनादिप्रवाह बतलाया है।

बौद्ध तार्किक धर्मकीर्तिने स्याद्वादपर निम्न प्रकारसे प्रहार किया है—

एतेनैव यत्किंचिदयुक्तमश्लीलमाकुलम्।
प्रलपन्ति प्रतिक्षिप्तं तदप्येकान्तसम्भवात्॥

''धर्मकीर्ति कहते हैं कि कपिलमतके खण्डनसे ही जैनदर्शनका, जो अयुक्त, अश्लील और आकुलरूप 'किंचित्' (स्यात्) का प्रलाप है वह खण्डित हो जाता है, क्योंकि उनका कथन भी एकान्तरूप सम्भव है।''

यहाँ धर्मकीर्तिने समन्तभद्रके ''सर्वथा (एकांत) के त्यागपूर्वक किंचित्के विधानरूप स्याद्वाद (आ० मी० १०४)'' का खण्डन किया है। इस खण्डनमें ''तदप्येकान्तसम्भवात्'' पदका प्रयोग करके उन्होंने समन्तभद्र द्वारा प्रतिपादित स्याद्वाद लक्षणकी मीमांसा की भी है।

इसका भी उत्तर अकलंकदेवने मय व्याजके निम्न प्रकार दिया है—

ज्ञात्वा विज्ञप्तिमात्रं परमपि च बहिर्भासिभावप्रवादम्,
चक्रे लोकानुरोधात् पुनरपि सकलं नेति तत्त्वं प्रपेदे।
न ज्ञाता तस्य तस्मिन् न च फलमपरं ज्ञायतेनापि किंचित्,
इत्यश्लीलं प्रमत्तः प्रलपति जड़धीराकुलः व्याकुलाप्तः॥

—न्यायविनिश्चय का० १७०

'कोई बौद्ध विज्ञप्तिमात्र तत्त्वको मानते हैं, कोई बाह्यपदार्थके सद्भावको स्वीकार करते हैं, कोई दोनोंको लोकानुसार अंगीकार करते हैं और कोई कहते हैं कि न बाह्यतत्त्व है, न आभ्यंतर तत्त्व, तथा न उनको जाननेवाला है। और न कोई उसका फल है। ऐसा परस्परविरुद्ध वे प्रलाप करते हैं। ऐसे लोगोंको अश्लील, उन्मत्त, जड़बुद्धि और आकुल कहा जाना चाहिए।'

धर्मकीर्ति केवल स्याद्वादपर आक्षेप करके ही मौन नहीं रहे, किन्तु 'स्याद्वाद'के वाच्य 'अनेकांत'के खण्डनपर भी उन्होंने कलम चलाई है। यथा—

सर्वस्योभयरूपत्वे तद्विशेषनिराकृतेः।
चोदितो दधि खादेति किमुष्ट्रं नाभिधावति॥

—प्र० वा० १–१८३

'यदि सब पदार्थ उभयरूप (अनेकान्तात्मक) हैं तो उनमें कुछ भेद न होनेके कारण किसीको 'दही खा' कहनेपर वह ऊँटको खानेके लिए क्यों नहीं दौड़ता ?

यहाँ धर्मकीर्तिने जिस उपहास एवं व्यंग्यके साथ समन्तभद्र द्वारा प्रतिपादित स्याद्वादके वाच्य अनेकान्तकी खिल्ली उड़ाई है, अकलंकदेवने भी उसी उपहासके साथ धर्मकीर्तिको उत्तर दिया है। यथा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दध्युष्ट्रादेरभेदत्वप्रसंगादेकचोदनम् ।
पूर्वपक्षमविज्ञाय दूषकोपि विदूषकः ॥
सुगतोऽपि मृगो जातो मृगोऽपि सुगतः स्मृतः ।
तथापि सुगतो वन्द्यो मृगः खाद्यो यथेष्यते ॥
तथा वस्तुबलादेव भेदाभेदव्यवस्थितेः ।
चोदितो दधि खादेति किमुष्ट्रमभिधावति ॥

—न्या० वि० ३७२, ३७३, ३७४ ।

"दही और ऊँटको एक बतलाकर दोष देना धर्मकीर्तिका पूर्वपक्ष (अनेकान्त) को न समझना है वे दूषक (दूषण प्रदर्शक) होकर भी विदूषक–दूषक नहीं, उपहासके ही पात्र हैं, क्योंकि सुगत भी पूर्व पर्यायमें मृग थे और वह मृग भी सुगत हुआ, फिर भी सुगत वंदनीय एवं मृग भक्षणीय कहा गया है ।'

इस तरह सुगत एवं मृगमें पर्याय भेदसे जिस कार क्रमशः वंदनीय एवं भक्षणीयका भेद तथा एक चित्तसंतानकी अपेक्षासे उनमें अभेदकी व्यवस्था की जाती है, उसी प्रकार वस्तु बल (प्रतीतिवश) से सभी पदार्थोंमें भेद और अभेद दोनोंकी व्यवस्था है । अतः किसीको 'दही खा' कहने पर वह ऊँटको खानेके लिए क्यों दौड़ेगा, क्योंकि सत्सामान्यकी अपेक्षासे उनमें अभेद होनेपर भी पर्याय (पृथक्-पृथक् प्रत्ययके विषय की अपेक्षासे उनमें स्पष्टतया भेद है। संज्ञा भेद भी है। एकका नाम दही है और दूसरेका नाम ऊँट है, तब जिसे दही खानेको कहा वह दही ही खायेगा, ऊँटको नहीं, क्योंकि दही भक्षणीय है, ऊँट भक्षणीय नहीं । जैसे सुगत वंदनीय एवं मृग भक्षणीय हैं । यही वस्तुव्यवस्था है । भेदाभेद (अनेकान्त) तो वस्तुका स्वरूप है । उसका अपलाप नहीं किया जा सकता" ।

यहाँ अकलंकने धर्मकीर्तिके आक्षेपका शालीन किन्तु उपहास पूर्वक, चुभने वाला करारा उत्तर दिया है । यह विदित है कि बौद्ध परम्परामें आप्तरूपसे मान्य सुगत पूर्व जन्ममें मृग थे, उस समय वे मांस भक्षियोंके भक्ष्य थे, किन्तु जब वही पूर्व पर्यायका मृग मरकर सुगत हुआ, तो वह वंदनीय हो गया । इस प्रकार एक चित्तसंतानकी अपेक्षा उनमें अभेद है । और मृग तथा सुगत इन दो पूर्वापर पर्यायोंकी अपेक्षा से उनमें भेद है ।

इस प्रकार जगतकी प्रत्येक वस्तु प्रत्यक्षदृष्ट भेदाभेदको लिए हुए है । और यही अनेकान्त है, कोई वस्तु इस अनेकान्तकी अवहेलना नहीं कर सकती ।

इस तरह अकलंकदेवने विभिन्न वादियों द्वारा स्याद्वाद और अनेकान्तपर किये गये आक्षेपोंका सयुक्तिक परिहार किया ।

नव निर्माण

अकलंकदेवका दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य नवनिर्माण है। जैनन्यायके जिन आवश्यक तत्त्वोंका विकास और प्रतिष्ठा अब तक नहीं हो पायी थी, उसकी उन्होंने प्रतिष्ठा की । इसके हेतु उन्होंने जैनन्यायके निम्न चार महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंकी रचना की—

१–न्यायविनिश्चय (स्वोपज्ञवृत्ति सहित),
२–सिद्धिविनिश्चय (स्वोपज्ञवृत्ति सहित),
३–प्रमाणसंग्रह (स्वोपज्ञवृत्ति सहित),
४–लघीयस्त्रय (स्वोपज्ञवृत्ति समन्वित) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बौद्ध परम्परामें जिस प्रकार धर्मकीर्तिने बौद्धदर्शन और बौद्धन्यायको प्रमाणवार्तिक, प्रमाणविनिश्चय जैसे कारिकात्मक ग्रन्थोंका निर्माणकर निबद्ध किया है उसी प्रकार अकलंकदेवने भी जैनदर्शन और जैन-न्यायको इन चार कारिकात्मक ग्रन्थों द्वारा निबद्ध किया है। न्यायविनिश्चय में ४३०, सिद्धि-विनिश्चयमें ३६७, प्रमाणसंग्रहमें ८७ और लघीयस्त्रयमें ७८ कारिकायें हैं। चारों ग्रन्थोंकी कुल कारिकायें ९६२ हैं। प्रत्येक कारिका सूत्रात्मक, बह्वर्थगर्भ और गम्भीर है। चारों ग्रन्थ अत्यन्त क्लिष्ट, दुरवगाह और दुरूह हैं। चारों पर उनकी स्वोपज्ञवृत्तियाँ हैं, ये वृत्तियाँ भी अत्यन्त कठिन हैं। हर्षकी बात है कि इन चारों पर वैदुष्यपूर्ण व्याख्याएँ भी लिखी गई हैं। न्यायविनिश्चय पर स्याद्वादविद्यापति वादिराज (ई० १०२५) ने न्यायविनिश्चयालंकार अपर नाम न्यायविनिश्चयविवरण, सिद्धिविनिश्चय पर तार्किक शिरोमणि बृहदनन्त-वीर्य (ई० ८५०) ने सिद्धिविनिश्चयालंकार तथा इन्होंने ही प्रमाणसंग्रह पर प्रमाणसंग्रहभाष्य और आचार्य माणिक्यनंदि (ई० १०२८) के शिष्य आचार्य प्रभाचन्द्र (१०४३) ने लघीयस्त्रय पर लघीयस्त्रया-लंकार अपर नाम न्यायकुमुदचन्द्र नामकी विस्तृत एवं प्रौढ़ टीकायें लिखी हैं। इनमें प्रमाणसंग्रहभाष्य अनुपलब्ध है। शेष तीनों टीकायें उपलब्ध हैं, और अपने मूलके साथ भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्लीसे प्रकाशित हैं। इन तीनोंका सुयोग्य सम्पादन स्व० पं० महेन्द्रकुमार जी न्यायाचार्यने किया है। प्रमाणसंग्रहभाष्यका उल्लेख स्वयं अनन्तवीर्यने अपने सिद्धिविनिश्चयालंकारमें अनेक स्थलों पर विस्तृत जाननेके लिए किया है। इससे प्रतीत होता है कि प्रमाणसंग्रहभाष्य भी एक विस्तृत टीका ग्रन्थ रहा है।

अकलंकदेवने इन चारों तर्कग्रन्थोंमें अन्य तार्किकोंकी एकान्तमान्यताओंकी कड़ी तथा मर्मस्पर्शी समीक्षा की है। जैनदर्शनमें मान्य प्रमाण, नय और निक्षेपके स्वरूप, उनके भेद, विषय तथा प्रमाणफलका विवेचन विशदतया किया है। इसके अतिरिक्त प्रत्यक्षके सांव्यवहारिक और मुख्य इन दो प्रकारोंकी प्रतिष्ठा, परोक्ष-प्रमाणके स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम इन पांच भेदोंका निर्धारण, उनकी सयुक्तिक सिद्धि, उनके लक्षणोंका प्रणयन तथा इन्हीं परोक्षभेदोंमें उपमान, अर्थापत्ति, सम्भव, अभाव आदि अन्य तार्किकोंके स्वीकृतप्रमाणोंका अन्तर्भाव, सर्वज्ञकी विविध युक्तिओंसे विशेष सिद्धि, अनुमानके साध्य-साधन अङ्गोंके लक्षण और भेदोंका विस्तृत निरूपण, कारण हेतु, पूर्वचर, उत्तरचर, सहचर आदि अनिवार्य नये हेतुओंकी प्रतिष्ठा अन्यथानुपपत्तिके अभावसे एक अकिञ्चित्कर हेत्वाभासका स्वीकार और उसके भेदरूपसे असिद्धादि हेत्वाभासोंका प्रतिपादन, वादका लक्षण, जय पराजय-व्यवस्था, दृष्टांत, धर्मी, जाति और निग्रह-स्थानके स्वरूप आदिका कितना ही नया प्रतिष्ठापन करके जैन न्यायको अकलंक देखने न केवल समृद्ध एवं परिपुष्ट किया, अपितु उन्हें भारतीय दर्शनों एवं न्यायोंमें प्रतिष्ठित एवं गौरवपूर्ण स्थान प्रदान किया, जैसा बौद्धदर्शन और बौद्धन्यायको धर्मकीर्तिने दिया। अतः अकलंकको जैनदर्शन और जैनन्यायके मध्य-कालका प्रतिष्ठापक और इस कालको अकलंककाल कहा जा सकता है।

अकलंकके इस कार्यको उत्तरवर्ती जैन दार्शनिकों एवं जैन नैयायिकोंने गति प्रदान की, वीरसेन, हरिभद्र, कुमारनंदि, विद्यानंद, अनंतवीर्यप्रथम, वादीभसिंह, वादिराज, माणिक्यनंदि आदि मध्ययुगीन जैन तार्किकोंने उनके कार्यको निश्चय ही आगे बढ़ाया और उसे यशस्वी एवं प्रभावपूर्ण बनाया। अकलंकके गम्भीर और सूत्रात्मक निरूपण तथा चिन्तनको इन तार्किकोंने अपने ग्रन्थोंमें सुपुष्ट और विस्तृत किया है। वीरसेनकी सिद्धान्त एवं तर्क-बहुला धवला-जयधवला टीकाएँ, हरिभद्रकी अनेकान्तजयपताका, शास्त्रवार्ता-समुच्चय, वादन्यायविचक्षण कुमारनंदिका वादन्याय, विद्यानंदके विद्यानंदमहोदय, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक और उसका भाष्य, अष्टसहस्री, आप्तपरीक्षा, प्रमाणपरीक्षा, पत्रपरीक्षा, सत्य-शासन परीक्षा, युक्त्यनुशासनालंकार,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनंतवीर्य प्रथमकी सिद्धिविनिश्चय टीका व प्रमाणसंग्रहभाष्य, वादिराजके न्याय-विनिश्चयविवरण एवं प्रमाणनिर्णय, वादीभसिंहकी स्याद्वादसिद्धि और माणिक्यनंदिका परीक्षामुख अकलंकके वाङ्मयसे पूर्णतया प्रभावित एवं उसके आभारी तथा उल्लेखनीय तार्किक रचनायें हैं, जिन्हें मध्यकालकी महत्त्वपूर्ण देन कहा जा सकता है।

३. अन्त्यकाल अथवा प्रभाचन्द्रकाल

यह काल जैन न्यायके विकासका अंतिम काल है। इस कालमें मौलिक ग्रन्थोंके निर्माणकी क्षमता कम हो गई और व्याख्या-ग्रन्थोंका निर्माण मुख्य हो गया। यह काल तार्किक ग्रन्थोंके सफल और प्रभावशाली व्याख्याकार जैन तार्किक प्रभाचन्द्रसे आरम्भ होता है। उन्होंने इस कालमें अपने पूर्वज जैन दार्शनिकों एवं तार्किकोंका अनुगमन करते हुए जैन न्यायके दो ग्रन्थों पर जो विशालकाय व्याख्याग्रन्थ लिखे हैं, वे अतुलनीय हैं। उत्तर कालमें उन जैसे व्याख्याग्रन्थ नहीं लिखे गये। अतएव इस कालको प्रभाचन्द्र काल कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। प्रभाचन्द्रने अकलंकदेवके लघीयस्त्रय पर लघीयस्त्रयालंकार अपर नाम न्यायकुमुदचन्द्र व्याख्या ग्रन्थ लिखा है। न्यायकुमुदचन्द्र वस्तुतः न्यायरूपी कुमुदोंको विकसित करनेवाला चन्द्र है। इसमें प्रभाचन्द्रने अकलंकके लघीयस्त्रयकी कारिकाओं और उसकी स्वोपज्ञवृत्ति तथा उनके दुरूह पदवाक्यादिकों-की विशद् एवं विस्तृत व्याख्या तो की ही है, किन्तु प्रसंगोपात्त विविध तार्किक चर्चाओं द्वारा अनेक अनुद्घाटित तथ्यों एवं विषयों पर भी नया प्रकाश डाला है। इसी तरह उन्होंने अकलंकके वाङ्मय मंथनसे प्रसूत माणिक्यनदिके आद्य जैन न्यायसूत्र परीक्षामुख पर जिसे लघु अनंतवीर्यने 'न्यायविद्यामृत' कहा है, परीक्षामुखालंकार अपरनाम प्रमेयकमलमार्तण्ड नामकी प्रमेयबहुला एवं तर्कगर्भा व्याख्या रची है। इस व्याख्यामें भी प्रभाचन्द्रने अपनी तर्कपूर्ण प्रतिभाका पूरा उपयोग किया है। परीक्षामुखके प्रत्येक सूत्रका विस्तृत एवं विशद् व्याख्यान किया है। इसके साथ ही अनेक शंकाओंका सयुक्तिक समाधान किया है। मनीषियोंको यह व्याख्याग्रन्थ इतना प्रिय है कि वे जैनदर्शन और जैनन्याय सम्बन्धी प्रश्नोंके समाधानके लिए इसे बड़ी रुचिके साथ पढ़ते हैं और उसे प्रमाण मानते हैं।

वस्तुतः प्रभाचन्द्रके ये दोनों व्याख्याग्रन्थ मूल जैसे ही हैं, जो उनकी अमोघतर्कणा और उनके उज्ज्वल यशको प्रसूत करते हैं।

प्रभाचन्द्रके कुछ ही काल बाद अभयदेवने सिद्धसेन प्रथमके सन्मतिसूत्र पर विस्तृत सन्मतितर्कटीका लिखी है। यह टीका अनेकांत और स्याद्वाद पर विशेष प्रकाश डालती है। देवसूरिका स्याद्वादरत्नाकर अपर-नाम प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार टीका भी उल्लेखनीय है। ये दोनों व्याख्याएँ प्रभाचन्द्रकी उपर्युक्त व्याख्याओंसे प्रभावित एवं उनकी आभारी हैं। प्रभाचन्द्रकी तर्क पद्धति और शैली इन दोनोंमें परिलक्षित है।

इन व्याख्याओंके सिवाय इस कालमें लघु अनंतवीर्यने परीक्षामुखपर मध्यम परिमाणकी परीक्षामुख-वृत्ति अपरनाम प्रमेयरत्नमालाकी रचना की है। यह वृत्ति मूलसूत्रों के अर्थको तो व्यक्त करती ही है, सृष्टि-कर्ता जैसे वादग्रस्त विषयों पर भी अच्छा एवं विशद प्रकाश डालती है। लघीयस्त्रय पर लिखी अभयचन्द्रकी तात्पर्यवृत्ति, हेमचन्द्रकी प्रमाणमीमांसा, मल्लिषेणकी स्याद्वादमंजरी, पण्डित आशाधरका प्रमेयरत्नाकर, भावसेनका विश्वतत्त्वप्रकाश, अजितसेनकी न्यायमणिदीपिका, अभिनवधर्मभूषणयतिकी न्यायदीपिका, नरेन्द्र-सेनकी प्रमाणप्रमेयकलिका, विमलदासकी सप्तभङ्गीतरङ्गणी, चारुकीर्ति भट्टारककी अर्थप्रकाशिका तथा प्रमेयरत्नालंकार, यशोविजयके अष्टसहस्रीविवरण, जैन तर्कभाषा और ज्ञान बिन्दु इसकालकी उल्लेखनीय तार्किक रचनाएँ हैं। अंतिम तीन तार्किकोंने अपनी रचनाओंमें नव्यन्यायशैलीको भी अपनाया है, जो बारहवीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शतीके विद्वान् गङ्गेश उपाध्यायसे उद्भूत हुआ और पिछले तीन-चार दशक तक अध्ययन, अध्यापनमें विद्यमान रहा। इसके बाद जैन न्यायका कोई मौलिक या व्याख्याग्रन्थ लिखा गया हो, यह ज्ञात नहीं। फलतः उत्तरकालमें जैनन्यायका प्रवाह अवरुद्ध हो गया।

इस बीसवीं शताब्दीमें अवश्य कतिपय जैन दार्शनिक एवं जैन नैयायिक हुए, जो उल्लेखनीय हैं। इन्होंने प्राचीन आचार्यों द्वारा लिखित जैनदर्शन और जैन न्यायके ग्रन्थोंका न केवल अध्ययन-अध्यापन किया, अपितु उनका राष्ट्रभाषा हिन्दीमें अनुवाद एवं सम्पादन भी किया है। साथमें उनकी अनुसंधान पूर्ण विस्तृत प्रस्तावनाएँ भी लिखी हैं, जिनमें ग्रन्थ एवं ग्रन्थकारके ऐतिहासिक परिचयके अतिरिक्त ग्रन्थगत विषयोंका भी तुलनात्मक एव समीक्षात्मक आकलन प्रस्तुत किया गया है।

उदाहरणके लिए सन्त प्रवर न्यायाचार्य श्री गणेशप्रसाद वर्णी, न्यायाचार्य पं० माणिक्यचंद कौन्देय, पं० सुखलाल संघवी, डॉ० पण्डित महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य, पं० दलसुख मालवणिया और प्रस्तुत आलेखके लेखक (डॉ० पं० दरबारीलाल कोठिया) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। वर्णीजीने अनेक छात्रोंको जैनदर्शन एवं न्यायमें प्रशिक्षित किया, श्री कौन्देयने आचार्य विद्यानंदके तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक भाष्यका सात खण्डोंमें हिन्दी रूपान्तर किया है। श्री संघवीने प्रमाणमीमांसा, ज्ञानबिन्दु, सन्मतितर्क, जैनतर्कभाषा आदि तर्क ग्रन्थोंका वैदुष्यपूर्ण सम्पादन व उनकी प्रस्तावनायें लिखी हैं। डॉ० पं० महेन्द्रकुमारने न्यायविनिश्चय-विवरण, सिद्धिविनिश्चयटीका, न्यायकुमुदचन्द्र, प्रमेयकमलमार्तण्ड, अकलंकग्रन्थत्रय, तत्त्वार्थवार्तिक भाष्य, तत्त्वार्थ-वृत्ति आदिका विद्वत्तापूर्ण सम्पादन एवं उनकी अनुसन्धानपूर्ण प्रस्तावनायें लिखी हैं। श्री मालवणियाने "आगमयुगका जैनदर्शन" आदिका लेखन-सम्पादन किया है। डॉ० कोठियाने न्यायदीपिका, आप्तपरीक्षा, प्रमाणपरीक्षा, पत्र परीक्षा, स्याद्वादसिद्धि, प्रमाणप्रमेयकलिका, द्रव्यसंग्रह आदि ग्रन्थोंका सम्पादन एवं हिन्दी अनुवाद किया तथा उनकी शोधपूर्ण विस्तृत प्रस्तावनाएँ उनके साथ निबद्ध की हैं। इसके अतिरिक्त "जैन तर्कशास्त्रमें अनुमान विचार, जैनदर्शन और प्रमाणशास्त्र परिशीलन, जैन तत्त्वज्ञानमीमांसा आदि मौलिक रचनाएँ भी हिन्दीमें प्रस्तुत की हैं।" पं० कैलाशचन्द्र शास्त्रीका जैनन्याय भी उल्लेखनीय है।

इस प्रकार जैन तार्किकोंने अपनी तार्किक रचनाओं द्वारा जैन वाङ्मयके भण्डारको समृद्ध किया है। और जैन न्यायका उल्लेखनीय विकास किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org